लीबिया पर साम्राज्यवादी हमला

विद्रोहियों पर गद्दाफी की विश्वस्त सेना की बढ़त को देख कर अमेरिका और उसके साम्राज्यवादी सहयोगी देशों को यह लगा कि कहीं गद्दाफी अपनी सत्ता कायम रख पाने में सफल न हो जाये। यद्यपि गद्दाफी की जीत से भी साम्राज्यवादियों को कोई असर पड़ने वाला नहीं था, क्योंकि गद्दाफी के सत्ता में रहते हुए भी उनके हितों को कोई ख़तरा नहीं पहुंच रहा था। पर जब अमेरिका ने यह देखा कि गद्दाफी के विरुद्ध जनभावना बड़ी ही उग्र है और भले ही तत्काल गद्दाफी जनता के विद्रोह को कुचलने में कामयाब हो जाये, पर जनता उसकी सत्ता को स्वीकार नहीं करेगी। उसका विद्रोह लगातार जारी रहेगा और इससे वहां गृहयुद्ध की स्थिति बनी रहेगी। ऐसी स्थिति में साम्राज्यवादियों को कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। वे बहुत आसानी से वहां के संसाधनों का दोहन नहीं कर पायेंगे। लीबिया में तेल और गैस का भंडार है और यही वह चीज है जिसे साम्राज्यवादी हड़पना चाहते हैं। बाकी उन्हें इस बात से कोई मतलब नहीं है कि वहां की जनता किन हालात में रह रही है। उन्हें तानाशाही और तथाकथित जनतंत्र से भी कोई मतलब नहीं है।

वास्तव में, अरब दुनिया में तानाशाही ताकतों को बिठाने और उन्हें हर संभव मदद पहुंचाने का काम अमेरिका ने ही किया है ताकि वे शासक उसके हुक्म के गुलाम बने रहें। पिछली एक शताब्दी से अरब दुनिया अपनी तेल संपदा के कारण साम्राज्यवादियों के निशाने पर रही है। पहले तो साम्राज्यवादियों ने वहां अपना सीधा कब्ज़ा ही कर रखा था और जम कर लूटपाट में लगे थे। इसके लिए उन्होंने हर किस्म के प्रतिक्रियावादी ताकतों और धार्मिक कठमुल्लों का समर्थन किया और यह पूरी कोशिश की कि अरब जगत में आधुनिकता का प्रवेश न हो सके। यह मध्यकालीन अंधकार में ही पड़ा रहे ताकि उनकी लूट बेरोक-टोक जारी रह सके।

पर जब पूरी दुनिया में जनतंत्र की लहर फैल रही थी और आधुनिकतावादी विचारों का प्रसार हो रहा था तो भला अरब जगत इससे अछूता कैसे रह सकता था! वहां भी राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रसार के साथ राष्ट्रवादी आंदोलनों की शुरुआत हुई, तब साम्राज्यवादी ताकतों ने राष्ट्रवादी आंदोलनों को कुचलने और धार्मिक कट्टरपंथियों को बढ़ावा देने का काम किया। यह काम साम्राज्यवादियों ने बड़ी ही सोची-समझी रणनीति के तहत किया।

लीबिया पर जारी है बमबारी

1940 व 50 के दशक में तीसरी दुनिया के अन्य देशों की तरह अरब जगत में भी बड़े पैमाने पर कम्युनिस्ट व प्रगतिशील आंदोलन पैदा हुए। बड़ी-बड़ी कम्युनिस्ट पार्टियों की स्थापना हुई। मज़दूरों के संगठन बने। अगर इनका संघर्ष सफल हो जाता तो पुरातनपंथी शासकों, धार्मिक कठमुल्लों के साथ साम्राज्यवादियों के प्रभुत्व का भी अंत हो जाता। तेल और गैस से भरे इस क्षेत्र को साम्राज्यवादी इतनी आसानी से कैसे छोड़ सकते थे? इसके लिए साम्राज्यवादियों ने तख़्तापलट से लेकर हर तरह के तिकड़मों का सहारा लिया और प्रतिक्रियावादी ताकतों की भरपूर मदद की। उन्होंने बड़े पैमाने पर दमन का सहारा लिया और प्रमुख देशों में अपनी कठपुतली सरकारें बनवाईं। सऊदी अरब का बहावी कट्टरपंथी शासक जो अभी सत्ता में मौजूद है, अमेरिका का प्रमुख सहयोगी है। ट्यूनेशिया का शासक बेन अली और मिस्र का शासक मुबारक जो पिछले चार दशकों से एक छत्र राज कर रहा था, अमेरिका का समर्थक था। अभी भी मिस्र की सेना और नौकरशाही में बड़े पैमाने पर ऐसे लोग भरे हुए हैं जो अमेरिकी साम्राज्यवादियों के समर्थक हैं जैसे हुस्नी मुबारक थे। अमेरिकी साम्राज्यवादी सालों से दो अरब डालर की रिश्वत प्रतिवर्ष मिस्र की सेना को देते हैं। मुबारक द्वारा नियुक्त सुलेमान से लेकर इस समय सत्ता संभालने वाली सैनिक परिषद् के सभी सदस्य उतने ही भ्रष्ट और अमेरिकापरस्त हैं जितना मुबारक था। इसलिए अमेरिका को कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन लीबिया के बारे में अमेरिका और उसके साम्राज्यवादी सहयोगी पूर्ण आश्वस्त नहीं हैं। अगर विद्रोही गद्दाफी पर काबू पा लेते हैं तो कैसी सरकार आयेगी और अगर गद्दाफी विद्रोहियों को कुचलने में कामयाब हो जाता है तो साम्राज्यवादी शासकों के प्रति उसका रवैया क्या होगा? हो सकता है कि वह शासन-व्यवस्था में कोई हेर-फेर करे जो साम्राज्यवादियों के मनोनुकूल न हो। दूसरे गद्दाफी साम्राज्यवादियों की ज्यादा परवाह भी नहीं करता है, क्योंकि उसने अपने यहां राजकीय पूंजीवाद का तंत्र स्थापित कर रखा है। लीबिया विकास के मामले में अरब जगत के कई देशों से आगे ही है। इसलिए अमेरिका और उसके सहयोगी देशों में ज्यादा घबराहट है।

वे चाहते हैं कि लीबिया में यदि गद्दाफी को जाना ही है तो उनके मनमाफ़िक कठपुतली सरकार बैठाने की व्यवस्था वे कर दें। उन्हें यह डर है कि लीबिया में गृहयुद्ध लंबा चल सकता है और इस गृहयुद्ध के परिणामस्वरूप न जाने कैसा शासक सत्ता में आये जो साम्राज्यवाद के लिए ज्यादा मददगार हो या नहीं। यही कारण है कि अमेरिका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी देशों ने लीबिया पर हमला बोल दिया है जो हर दृष्टि से ग़लत है। लीबिया में गद्दाफी के विरुद्ध विद्रोह वहां का आंतरिक मामला है और इस मामले में किसी अन्य देश को कूदने का कोई अधिकार नहीं है। पर अमेरिका अपने आप को दुनिया का दारोगा समझता है। यही कारण है कि उसने लीबिया पर हमला बोल दिया है जिसका कोई आधार ही नहीं है। आज यदि पाकिस्तान की जनता अपने शासकों के खिलाफ़ विद्रोह कर देती है तो क्या अमेरिका और उसके सहयोगी देश पाकिस्तान पर आक्रमण कर सकते हैं? यह ठीक है कि मुअम्मर गद्दाफी एक तानाशाह है, पर उससे निपटना और उसके भाग्य का फैसला करना लीबिया की जनता के हाथों में है, अमेरिका और उसके सहयोगी साम्राज्यवादी देशों के हाथों में नहीं।

लीबिया पर हमला करने के पीछे अमेरिका का एकमात्र उद्देश्य है वहां अपने कठपुतले शासक को बैठाना ताकि वह वहां से तेल और गैस का मनचाहा दोहन कर सके। लीबिया पर अमेरिकी हमला हर दृष्टि से ग़लत है और इसका विरोध होना चाहिए। इस प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्र संघ को अमेरिका और उसके सहयोगी देशों को अपनी सीमा में रहने की चेतावनी देनी चाहिए, पर संयुक्त राष्ट्र संघ की अमेरिका के सामने कोई औकात नहीं रह गई है। नहीं तो आज ऐसी स्थिति नहीं आती और अमेरिका एवं उसके सहयोगी देश इस तरह की खुली मनमानी नहीं कर पाते।

यह आश्चर्य की बात है कि लीबिया पर अमेरिका के हमले के विरोध में बहुत ही कम देशों ने मुंह खोला है। भारत ने भी लगभग मिमियाते हुए अमेरिका की इस कार्रवाई को अनुचित बताया है। पर अमेरिका को किसी की परवाह नहीं है। अपनी शक्ति के मद में वह अंधा हो चुका है। यह संभव है कि लीबिया को वह अपने कब्ज़े में ले ले। उसने पहले भी इराक पर हमला कर वहां के शासक सद्दाम हुसैन को फांसी पर चढ़ा कर उस देश पर कब्ज़ा कर लिया और अब अमेरिकी कंपनियां वहां से तेल एवं गैस का भरपूर दोहन कर रही हैं। दूसरी तरफ, पूरे देश में अराजकता का आलम है। वहां की जनता अमेरिकी दखलंदाज़ी के कारण त्रस्त है। इसी प्रकार अमेरिका ने अफगानिस्तान में अपना कठपुतला शासक बिठा रखा है जिसकी कोई अहमियत ही नहीं है, पर वह अमेरिकी हितों को जहां तक संभव होगा, पूरा करने की कोशिश तो करेगा ही। अगर उससे बात नहीं बनेगी तो अमेरिका तालिबान तक से समझौता कर सकता है, इस हद तक वह प्रतिक्रियावादी है।

लीबिया पर अमेरिकी हमला साम्राज्यवाद की दादागिरी का प्रत्यक्ष नमूना है। इसलिए जो लोग साम्राज्यवादी प्रभुत्व के खिलाफ़ हैं, उन्हें लीबिया पर अमेरिकी हमले का विरोध करना चाहिए।

– प्रतिनिधि

अपने अंत की ओर बढ़ता हुआ गद्दाफी

मिस्र और ट्यूनीशिया के बाद अब लीबिया के क्रूर शासक कर्नल मुअम्मर गद्दाफी का शासन जनता के क्रोध की आग की लपेट में आ चुका है। लीबिया की राजधानी त्रिपोली गद्दाफी समर्थकों और जनता के बीच रणक्षेत्र में तब्दील होती जा रही है। गद्दाफी के कई विश्वस्त उसका साथ छोड़ते जा रहे हैं।

गद्दाफी ने कभी अहंकारपूर्वक घोषणा की थी कि 'वह, वह है जिसने लीबिया को जन्म दिया था' और अभी हाल में एक अख़बार के अनुसार उसने यह भी कहा कि 'मैं ही वह होऊंगा जो कि इसे नष्ट भी करेगा।' कर्नल गद्दाफी यह डींग उस समय हांक रहा था जब उसके एकदम पड़ोस के देश मिस्र और ट्यूनेशिया में कल के क्रूर शासक इतिहास के कूड़ेदान में फेंके जा चुके हैं।

गद्दाफी के पतन को नजदीक देख कर धूर्त अमेरिकी और यूरोपीय साम्राज्यवादियों ने जो कल तक गद्दाफी की प्रशंसा में कसीदे पढ़ते थे तथा उसके साथ गलबहियां डाल कर लीबिया के उत्कृष्ट तेल का दोहन करते थे, अब उसे जनतंत्र, स्वतंत्रता आदि-आदि के पाठ पढ़ाते हुए सत्ता से हट जाने को कह रहे हैं, ताकि नये शासकों के साथ वे नये समीकरणों के हिसाब से सौदेबाजी कर सकें और लीबिया की जनता के शोषण व प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए नये षडयंत्र रच सकें। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली के शासकों को शायद यह गुमान है कि उनका हश्र कभी मुबारक, बेन अली या गद्दाफी की तरह नहीं होगा और वे इस तरह से उपदेश और धमकियां देते हैं मानो वे खुद दूध के धुले हों।

इटली जिसके हमेशा से और खास कर हाल के वर्षों में लीबिया से गहरे संबंध रहे हैं, का ऐय्याश व कामुक प्रधानमंत्री बर्लुस्कोनी गद्दाफी को एक के बाद एक सलाह व धमकियां दे रहा है।

अमेरिकी व यूरोपीय साम्राज्यवादी गद्दाफी के ऊपर दबाव बनाने के लिए एक तरफ उसकी वायुसेना के लिए 'नो फ्लाई जोन' घोषित कर रहे हैं और अपनी नौसेना को उसके जलक्षेत्र के करीब ला रहे हैं।

कर्नल गद्दाफी 'अरब राष्ट्रवाद', 'समाजवाद', 'वास्तविक जनवाद' जैसे नारों के साथ पिछले 41 वर्ष से शासन कर रहा है। 1969 में राजा इदरीस प्रथम के शासन को एक तथाकथित क्रांति के जरिये पलट कर गद्दाफी लीबिया की सत्ता पर काबिज़ हुआ। 'अरब राष्ट्रवाद',

आज लीबिया ऐसे दोराहे पर खड़ा है जहां वह गद्दाफी के तानाशाही पूर्ण शासन के अंत के बाद फ़िर इस सवाल से जूझेगा कि उसे पश्चिमी किस्म की व्यवस्था वाला पूंजीवादी लोकतंत्र चाहिए या उसे असली किस्म का समाजवाद चाहिए जो कि गद्दाफी के तानाशाही पूर्ण राजकीय पूंजीवाद का कोई रूप न हो कर वैज्ञानिक समाजवाद की मूल भावनाओं और दिशा से ओत-प्रोत हो।

'समाजवाद' आदि नारों के जरिये उसने कठोर नियंत्रण वाले राजकीय पूंजीवाद की स्थापना की। सत्ता में आने के तीन साल के भीतर ही उसने 1972 में सभी राजनीतिक दलों पर पाबंदी लगा दी। मज़दूरों को ट्रेड यूनियन बनाने का अधिकार नहीं था और वे हड़ताल पर नहीं जा सकते थे। लीबिया का यह समाजवाद ब्रेझनेव के सोवियत संघ जिसमें पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो चुकी थी, की एक विकृत नकल भर था। उसने राजा इदरीस के अमेरिकी साम्राज्यवाद से निकटता की नीति के स्थान पर उससे दूरी और तेल कंपनियों के राष्ट्रीयकरण की नीति अपनायी।

कर्नल गद्दाफी के शासन के खिलाफ़ संघर्ष करते हुए पिछले कुछ हफ्तों में ही दो हज़ार लोग मारे जा चुके हैं तथा घायलों की संख्या छ: हज़ार से भी अधिक हो चुकी है। लीबिया की आबादी 65 लाख के करीब है। राजधानी त्रिपोली सबसे बड़ा शहर है और इसकी आबादी 17 लाख है। त्रिपोली में गद्दाफी का प्रभाव अभी भी बना हुआ है, यद्यपि लीबिया के कई प्रमुख शहर सेना के विद्रोहियों के साथ मिल जाने के कारण उसके हाथ से निकल चुके हैं। त्रिपोली में भी कई बटालियनें गद्दाफी के प्रति वफ़ादार नहीं रह गई हैं।

मुअम्मर गद्दाफी ने 2008 में दंभपूर्वक घोषणा की थी कि वह अफ्रीका में 'राजाओं का राजा है।' परंतु 'राजाओं का राजा' उसी नियति को प्राप्त हो रहा है जो पहले के ऐसे राजाओं की हुई है। अब वह कबीलाई निष्ठा व विश्वासों की बात कर रहा है।

लीबिया में सत्ता परिवर्तन की लड़ाई ट्यूनेशिया और मिस्र से ज्यादा जुझारू ढंग से लड़ी जा रही है। इस संघर्ष को किसी किस्म की क्रांति की संज्ञा नहीं दी जा सकती है।

उसकी वजह मात्र यह है कि आज के समय में क्रांति का सीधा और एकमात्र आशय पूंजीवादी व्यवस्था का अंत और उसके स्थान पर समाजवाद की स्थापना करना है। किसी भी देश में समाजवाद की स्थापना के लिए मज़दूर वर्ग की भूमिका, नेतृत्व व दृढ़ता की आवश्यकता है। आज लीबिया ऐसे दोराहे पर खड़ा है जहां वह गद्दाफी के तानाशाही पूर्ण शासन के अंत के बाद फ़िर इस सवाल से जूझेगा कि उसे पश्चिमी किस्म की व्यवस्था वाला पूंजीवादी लोकतंत्र चाहिए या उसे असली किस्म का समाजवाद चाहिए जो कि गद्दाफी के तानाशाही पूर्ण राजकीय पूंजीवाद का कोई रूप न हो कर वैज्ञानिक समाजवाद की मूल भावनाओं और दिशा से ओत-प्रोत हो।

– नागरिक से साभार